॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभरतजीमें नवधा भक्ति

श्रीमद्भागवतमें वर्णित नवधा भक्तिके आदर्श श्रीप्रह्लादजी थे। जब हिरण्यकशिपुने पूछा कि तुमने गुरुजीसे इतने कालतक जो कुछ पढ़ा है, उन पढ़े हुए पाठोंमें जिसको तुम सबसे श्रेष्ठ समझते हो, उसे सुनाओ; तब श्रीप्रह्लादजीने कहा—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥

(श्रीमद्भा० ७। ५। २३-२४)

'भगवान् श्रीविष्णुके नाम, रूप, गुण और प्रभावादिका श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान्‌की चरण-सेवा, पूजन और वन्दन एवं भगवान्‌में दासभाव, सखाभाव और अपनेको समर्पण कर देनेका भाव—यह नौ प्रकारकी भक्ति है। यदि मनुष्यके द्वारा इस तरह यह नौ प्रकारकी भक्ति भगवान् श्रीविष्णुके प्रति की जाय तो मैं उसको निश्चय ही उत्तम अध्ययन समझता हूँ।'

श्रीप्रह्लादजीके द्वारा कथित नवधा भक्तिके ये सारे-के-सारे प्रकार परम प्रेमी अनन्य भक्त श्रीभरतजीमें प्राप्त होते हैं। भरतजी सदाचार-सद्‌गुणसम्पन्न, ज्ञानवान्, विरक्त, त्यागी एवं भगवान्‌के अनन्य विशुद्ध निष्काम प्रेमी भक्त थे। श्रीतुलसीदासजीने अपने रामचरितमानसमें उनकी महिमाका जगह-जगह मुक्तकण्ठसे गान किया

है। श्रीरामचरितमानसमें जहाँ भी भरतजीका चरित्र आया है, उसको पढ़नेसे यदि पाठकके हृदयमें थोड़ा भी प्रेम हो तो उसका हृदय गद्‌गद हो जाता है और अश्रुपात होने लगते हैं।

भरतजीकी महिमाके वर्णनमें श्रीतुलसीदासजीने स्वयं कहा है—

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥

× × ×

भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥

× × ×

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥

× × ×

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

श्रीजनकजी तो भरतजीके चरित्र, गुण, भक्ति और प्रेमभावको देखकर मुग्ध ही हो गये। चित्रकूटमें वे अपनी पत्नी रानी सुनयनासे कहते हैं—

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद॥
भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥

× × ×

भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

× × ×

देबि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

भरतजी महाराज प्रेममयी भक्तिके अगाध सागर थे, या यों कहिये कि वे साक्षात् प्रेमकी मूर्ति ही थे। जहाँ-कहीं भरतजीका चरित्र देखते हैं, वहीं प्रेमका समुद्र लहराता दीखता है। इसके सिवा, वे सद्गुण-सदाचारमें भी अद्वितीय थे। जिनके गुण, चरित्र, स्वभाव और प्रेमको देखकर श्रीरामचन्द्रजी भी मुग्ध हो गये। वे कहते हैं—

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥
करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात॥

भरतजीकी महिमा कहाँतक बतलायी जाय? उनकी महिमा रामायणमें भरी पड़ी है। यहाँ तो केवल संक्षेपमें कुछ दिग्दर्शन कराया गया है। लेखका कलेवर न बढ़ जाय, इसलिये अधिक प्रमाण उद्धृत नहीं किये गये।

अब भक्तिके उपर्युक्त नौ प्रकार श्रीभरतजीके जीवन-चरित्रमें जिस प्रकार घटित हुए हैं, इसका महाभारत, श्रीरामचरितमानस, पद्मपुराण, वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण आदि ग्रन्थोंके आधारपर कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है।

(१) श्रवण-भक्ति

भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंके द्वारा कथित भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और रहस्यसे पूर्ण अमृतमयी कथाओंका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण करना एवं उन अमृतमयी कथाओंका श्रवण करके प्रेममें मुग्ध हो जाना श्रवण-भक्तिका स्वरूप है।

ये लक्षण श्रीभरतजीमें प्रत्यक्ष दीखते हैं। श्रीभगवान्‌के गुण, चरित्र, प्रेम और प्रभावको सुन-सुनकर भरतज़ी मुग्ध होते थे। जिस समय हनुमान्‌जी भगवान्‌का विजय-संदेश सुनाने भरतजीके पास नन्दिग्राममें पहुँचे, तब हनुमान्‌जीके द्वारा इस शुभ संदेशके सुनते ही भरतजीकी बड़ी ही अद्भुत दशा हो गयी।

उस अवस्थाका वर्णन करते हुए श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा॥

× × ×

मिलत प्रेम नहि हृदयँ समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता॥
एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥
तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥

वाल्मीकीय रामायणमें भरतजी हनुमान्‌जीसे कहते हैं—

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम्।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम्॥

(युद्ध० १२६। १)

'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको उस महान् वनमें गये बहुत-से वर्ष

व्यतीत हो गये, किंतु उसके बाद आज ही मैं, मेरे स्वामीका प्रीतिकारक कीर्तन (संदेश) सुन रहा हूँ।'

ऐसा ही श्लोक कुछ पाठभेदसे अध्यात्मरामायणमें भी मिलता है। इसके बाद वहाँ बतलाया है—

एवमुक्तोऽथ हनुमान् भरतेन महात्मना ॥
आचचक्षेऽथ रामस्य चरितं कृत्स्नशः क्रमात्।
श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतो मारुतात्मजात् ॥

(युद्ध० १४।६५-६६)

'इसके पश्चात् महात्मा भरतजीके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीका क्रमशः सम्पूर्ण चरित्र सुना दिया। पवनकुमार हनुमान्‌जीसे वह सब चरित्र सुनकर श्रीभरतजीको अत्यन्त आनन्द हुआ।'

उस समयकी भरतजीकी अवस्थाका वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकिजी कहते हैं—

ततः स वाक्यैर्मधुरैर्हनूमतो निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः।
उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणीं चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः ॥

(वा० रा०, युद्ध० १२६।५५)

'इसके अनन्तर हनुमान्‌जीके उन मधुर वचनोंको श्रवण करके भरतजी बड़े ही प्रसन्न हुए। वे हाथ जोड़कर मनको अतिशय हर्षित करनेवाली वाणी बोले—'अहो! आज मेरा बहुत दिनोंका मनोरथ पूर्ण हो गया।'

जिस समय भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक हो जानेपर सब भाई अयोध्यामें सुखपूर्वक निवास करने लगे, उस समय जब कभी भरतजी और शत्रुघ्नजी हनुमान्‌जीसहित उपवनमें जाया करते, तब श्रीहनुमान्‌जीसे भगवान्‌के गुणानुवाद सुना करते। उस वर्णनसे इनका कथा-श्रवणमें

अत्यन्त अनुराग और तज्जन्य आह्लाद, मुग्धता आदि प्रत्यक्ष प्रकट हो रहे हैं। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई॥
बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥

(२) कीर्तन-भक्ति

भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित, तत्त्व और रहस्यका श्रद्धा-प्रेमपूर्वक उच्चारण करते-करते शरीरमें रोमाञ्च, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदयकी प्रफुल्लता, मुग्धता आदिका होना कीर्तन-भक्तिका स्वरूप है।

ये लक्षण भी भरतजीमें मिलते हैं। जिस समय भरतजी शृङ्गवेरपुर पहुँचकर गङ्गातटपर ठहर गये, उस समय वहाँ उनके पास गुह आया तो उसने—

दृष्ट्वा भरतमासीनं सानुजं सह मन्त्रिभिः।
चीराम्बरं घनश्यामं जटामुकुटधारिणम्॥
राममेवानुशोचन्तं रामरामेति वादिनम्।
ननाम शिरसा भूमौ गुहोऽहमिति चाब्रवीत्॥

(अध्यात्म०, अयोध्या० ८। २०-२१)

'मेघके समान श्याम शरीरवाले, चीर-वस्त्र पहने, जटाका मुकुट धारण किये हुए तथा श्रीरामका ही स्मरण-चिन्तन करते हुए और 'राम-राम'—इस प्रकार कहते हुए एवं मन्त्रियोंके साथ बैठे हुए छोटे भाई शत्रुघ्नजीसहित भरतजीको देखकर पृथ्वीपर माथा टेककर प्रणाम किया और कहा कि 'मैं गुह हूँ।'

इसके पश्चात् भरतजी प्रयाग गये तो वहाँ भी भजन-कीर्तन करते

हुए ही गये। श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं—

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥

जिस समय भगवान्‌के विरहमें व्याकुल हुए श्रीभरतजी नन्दिग्राममें निवास करते थे, उस समय वे मुनियोंकी भाँति अपना समय बिताया करते थे। वहाँ वे प्रेममें मुग्ध होकर भगवान्‌के नामका जप और उनके गुण तथा चरित्रोंकी अमृतमयी कथाका वर्णन भी किया करते थे। श्रीरामचरितमानसमें बतलाया है—

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥

पद्मपुराणके पातालखण्डमें भी आता है—

गर्तशायी ब्रह्मचारी जटावल्कलसंयुतः।
कृशाङ्गयष्टिर्दुःखार्तः कुर्वन् रामकथां मुहुः॥

(१।३०)

'उन दिनों भरतजी जमीनमें गड्ढा खोदकर उसीमें सोया करते थे। ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए मस्तकपर जटा और शरीरपर वल्कल वस्त्र धारण किये रहते थे। उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। वे बार-बार श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कहते हुए वियोगके दुःखसे आतुर रहते थे।'

वहाँ नन्दिग्राममें भरतजीके पास जब हनुमान्‌जी पहुँचे, तब वे देखते हैं—

कथयन्तं मन्त्रिवृद्धान् रामचन्द्रकथानकम्।
तदीयपदपाथोजमकरन्दसुनिर्भरम्॥

(पद्म०, पाताल० २।१२)

'भरतजी अपने वृद्ध मन्त्रियोंसे श्रीरामचन्द्रजीकी कथाएँ कह रहे हैं, जो कि उनके चरणकमलोंके मकरन्दसे अत्यन्त भरपूर हैं।'

उस समय तपस्यासे कृश हुए विरक्त भरतको भगवान् श्रीरामकी विरह-व्याकुलताभरी विह्वलताकी अवस्थामें निमग्न तथा भगवान्‌के नामका जप करते हुए देखकर हनुमान्‌के आनन्दकी सीमा नहीं रही। श्रीहनुमान्‌जीकी उस अवस्थाका वर्णन श्रीगोस्वामीजीके शब्दोंमें ही पढ़िये—

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥
देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी॥
जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

इस प्रकार श्रीभरतजीके भगवन्नामजप और गुणादिके कीर्तनका बड़ा ही सुन्दर प्रकरण मिलता है। हमलोगोंको उचित है कि जिस प्रकार प्रेमी भक्त भरतजी प्रेममें मग्न होकर जप तथा कथा-कीर्तन किया करते थे, उसी प्रकार हम भी उनका अनुकरण करें।

(३) स्मरण-भक्ति

प्रभुके नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और रहस्यका प्रेममें मुग्ध होकर मनन करना और इस प्रकार मनन करते-करते भगवान्‌के स्वरूपमें तल्लीन हो जाना स्मरण-भक्तिका स्वरूप है। भरतजीमें ये लक्षण भी मिलते हैं। भगवान् श्रीरामका बारम्बार चिन्तन करनेका तो उनका स्वभाव ही था। वे सदा सर्वगुणसम्पन्न भगवान् श्रीरामके अद्भुत रूपलावण्यसंयुक्त स्वरूपका विशेषरूपसे चिन्तन किया करते थे। वे अयोध्यामें रहते हुए तो भगवान्‌का चिन्तन करते ही थे, किंतु जब भगवान्‌को अयोध्या लौटा लानेके लिये चित्रकूट गये तब रास्तेमें भी भगवान्‌का चिन्तन करते हुए ही चले और चित्रकूटमें

तो वे साक्षात् भगवान् श्रीरामका दर्शन कर ही रहे थे। तदनन्तर जब भरतजी चित्रकूटसे अयोध्या लौटे तब रास्तेमें उनके गुण, चरित्र और स्वरूपका मनन करते हुए ही आये एवं नन्दिग्राममें आकर तो उन्होंने अपना अधिक समय चिन्तनमें ही बिताया।

अध्यात्मरामायणमें भरतजीके अयोध्या-निवास-कालका वर्णन करते हुए लिखा है—

अवसत्स्वगृहे तत्र राममेवानुचिन्तयन्।
वसिष्ठेन सह भ्रात्रा मन्त्रिभिः परिवारितः॥

(अयोध्या० ७। ११३)

'वहाँ (अयोध्यामें) अपने घरमें गुरु वसिष्ठजी और भाई शत्रुघ्नके साथ एवं मन्त्रियोंसे घिरे हुए भरतजी श्रीरामचन्द्रजीका ही स्मरण करते हुए रहने लगे।'

चित्रकूटके मार्गमें भरतजीकी अवस्थाका वर्णन करते हुए बतलाया है—

इत्यद्भुतप्रेमरसाप्लुताशयो विगाढचेता रघुनाथभावने।
आनन्दजाश्रुस्नपितस्तनान्तरः शनैरवापाश्रमसन्निधिं हरेः॥

(अध्यात्म०, अयोध्या० ९। ४)

'जिनका हृदय इस प्रकार अद्भुत प्रेमरससे भरा हुआ है, मन श्रीरघुनाथजीकी भावनामें डूबा हुआ है तथा वक्षःस्थल आनन्दाश्रुओंसे भीगा हुआ है, वे भरतजी धीरे-धीरे श्रीहरिके आश्रमके निकट पहुँचे।'

तथा—

भरतस्तु सहामात्यैर्मातृभिर्गुरुणा सह॥
अयोध्यामगमच्छीघ्रं राममेवानुचिन्तयन्।

(अध्यात्म०, अयोध्या० ९। ६९-७०)

'भरतजी अपने मन्त्रियों, माताओं और गुरु वसिष्ठजीके साथ श्रीरामचन्द्रजीका ही चिन्तन करते हुए शीघ्रतासे अयोध्याको लौट चले।'

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरहँ सबु साजु बिहालू॥
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं॥

नन्दिग्राममें निवास करते हुए भरतजी अपने मन्त्रियोंसे कहते हैं—

दुर्भगस्य मम प्राप्तं स्वाघमार्जनमादरात्।
करोमि रामचन्द्राङ्घ्रि स्मारं स्मारं सुमन्त्रिणः॥

(पद्म०, पाताल० १।४०)

'मन्त्रिगण! मुझ अभागेके लिये अपने पापोंके प्रायश्चित्त करनेका यह अवसर प्राप्त हुआ है। अतः मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका निरन्तर आदरपूर्वक स्मरण करते हुए अपने दोषोंका मार्जन करूँगा।'

उस समय हनुमान्‌जीने—

ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम्॥
मलपङ्कविदिग्धाङ्गं जटिलं वल्कलाम्बरम्।
फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम्॥
यं त्वं चिन्तयसे रामं तापसं दण्डके स्थितम्।
अनुशोचसि काकुत्स्थः स त्वां कुशलमब्रवीत्॥

(अध्यात्म०, युद्ध० १४।५१, ५२, ५५)

'अति दीन और दुर्बल अवस्थामें आश्रममें निवास करते हुए, अत्यन्त मलिन शरीरवाले, जटाजूट और वल्कल वस्त्र धारण किये हुए तथा फल-मूलादिका भोजन करके भगवान् श्रीरामके ध्यानमें तत्पर हुए भरतजीको देखा और कहा—'भरतजी! आप जिन दण्डकारण्यवासी तपोनिष्ठ भगवान् श्रीरामका चिन्तन करते हैं तथा जिनके लिये आप

इतना अनुताप करते हैं, उन ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने आपको अपनी कुशल कहला भेजी है।'

वहाँ भरतजी समय-समयपर भगवान्‌के गुण, चरित्र और प्रभावसे संयुक्त स्वरूपको याद करते हुए विरह-व्याकुलतामें मुग्ध हो जाया करते थे। परन्तु साथ-साथ उनको भगवान्‌के विरदपर यह पूरा विश्वास था कि भगवान् मुझे अवश्य मिलेंगे। इस आधारपर वे क्षण-क्षणमें भगवान्‌की प्रतीक्षा किया करते थे। उन्हें भगवान्‌के दर्शनमें विलम्ब असह्य था, अतः वे विरहव्याकुलतामें निमग्न हुए मन-ही-मन करुणाभावसे विलाप किया करते थे। इस विषयमें श्रीतुलसीदासजीने उनके विलापका बहुत ही सुन्दर चित्र खींचा है। वे कहते हैं—

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

भगवान् श्रीरामके वियोगमें उनकी आशा-प्रतीक्षा करते हुए भरतजी किस प्रकार उनके गुण और स्वभावका चिन्तन करनेमें अपना

समय बिता रहे हैं, यह ध्यान देने योग्य है।

(४) पादसेवन-भक्ति

श्रीभगवान्‌के दिव्य मङ्गलमय स्वरूपकी धातु आदिकी मूर्ति, चित्रपट अथवा मानस मूर्तिके मनोहर चरणोंका तथा उनकी चरण-रज और चरण-पादुकाओंका श्रद्धापूर्वक दर्शन, चिन्तन, पूजन और सेवन करते-करते भगवत्प्रेममें मग्न हो जाना और उनका चरणामृत लेना 'पाद-सेवन' कहलाता है।

ये लक्षण भी भरतजीमें मिलते हैं। पादसेवन-भक्तिके तो भरतजी आचार्य ही हैं। यद्यपि लक्ष्मीजी सदा ही भगवान्‌के चरणोंकी सेवामें रत हैं, किंतु चरणोंके ही समान चरण-पादुकाओंकी भी सेवा-पूजा करनेकी शिक्षा तो हमें भरतजीसे ही मिलती है। इसके सिवा चरण-रजका आदर भी जैसा भरतजीने किया, वैसा किसीने किया हो, इसका कोई उल्लेख वाल्मीकीय रामायणकालसे पूर्व कहीं देखनेमें प्रायः नहीं आता।

चित्रकूटके लिये प्रस्थान करनेके पूर्वसे ही भरतजीके हृदयमें जो भगवान्‌के चरणकमलोंमें अनन्य भक्ति तथा चरणोंके दर्शन और सेवनकी लालसा विद्यमान थी, वह अलौकिक और प्रशंसनीय है। वे जब अयोध्यासे चित्रकूट गये, तब रास्तेमें जहाँ कहीं भगवान्‌की चरण-रज मिली, वे उसको बड़े ही आदर-सम्मानपूर्वक श्रद्धा-प्रेमसे सिर और आँखोंपर लगाकर मुग्ध हो गये। भरतजी महाराज श्रीरामचन्द्रजीकी चरण-सेवाके हेतु ही उनको चित्रकूटसे अयोध्या लौटनेका आग्रह करते रहे। किंतु जब भगवान्‌ने किसी प्रकार भी अयोध्या जाना स्वीकार नहीं किया, तब उन्होंने चरण-सेवाके अङ्गरूप चरण-पादुका प्रदान करनेकी प्रार्थना की। इतना ही नहीं, उन्होंने भगवान्‌के द्वारा दी हुई चरण-पादुकाओंको अपने मस्तकपर धारण करके उनको ही अपने वियोगकी अवधिका

आधार बनाया तथा वे चित्रकूटसे लौटते समय मार्गमें भी चरण-पादुकाओंका ही मनन करते हुए नन्दिग्राम पहुँचे। वहाँ आकर भरतजी चरण-पादुकाओंको राज्यसिंहासनपर स्थापन करके राज्यका सारा कार्य उन्हींको निवदेन करके किया करते थे। वे चरण-पादुकाओंको ही अपने प्राणोंका आधार मानते और बहुत ही श्रद्धा-प्रेमपूर्वक उनका पूजन किया करते। वाल्मीकीय और अध्यात्म-रामायणमें तो यहाँतक दिखलाया है कि जब श्रीरामचन्द्रजी महाराज अयोध्या लौटे, तब भरतजी चरण-पादुकाओंको मस्तकपर धारण करके उनके सामने गये। धन्य है, भरतजीकी चरण-सेवा-भक्तिको !

श्रीभरतजी कहते हैं—

यावन्न चरणौ भ्रातुः पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ ।
शिरसा प्रग्रहीष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यति ॥

(वा० रा०, अयोध्या० ९८ । ९)

'जबतक मैं राजाके उपयुक्त चिह्नोंसे युक्त भाईके चरणोंको सिरसे प्रणाम न कर लूँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।'

श्रीरामचरितमानसमें लिखा है—

चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥

तथा—

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका ॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा ॥

अध्यात्मरामायणमें बतलाया है—

स तत्र वज्राङ्कुशवारिजाञ्चितध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः ।
ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गलान्यचेष्टयत्पादरजःसु सानुजः ॥

अहो सुधन्योऽहममूनि रामपादारविन्दाङ्कितभूतलानि ।
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम् ॥

(अयोध्या० ९ । २-३)

'भरतजीने वहाँ सब ओर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वज्र, अङ्कुश, कमल और ध्वजा आदिके चिह्नोंसे सुशोभित तथा पृथ्वीके लिये अति मङ्गलमय चरण-चिह्न देखे। उन्हें देखकर भाई शत्रुघ्नके सहित वे उस चरणरजमें लोटने लगे और मन-ही-मन कहने लगे—'अहो ! मैं परम धन्य हूँ ! जो आज श्रीरामचन्द्रजीके उन चरणारविन्दोंके चिह्नोंसे सुशोभित भूमिको देख रहा हूँ, जिनकी चरणरजको ब्रह्मा आदि देवगण और सम्पूर्ण श्रुतियाँ भी सदा खोजती रहती हैं।''

जब चित्रकूटमें अनेक आग्रह करनेपर भी भगवान् श्रीराम अयोध्या चलनेको तैयार न हुए, तब भरतजीने कहा—

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते ।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् ॥
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन ।
तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन् वै नगराद् बहिः ॥
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप ।
चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।

(वा० रा०, अयोध्या० ११२ । २१, २३—२६)

'आर्य ! आप इन दोनों सुवर्णभूषित पादुकाओंपर अपने चरण रखें ! ये ही सम्पूर्ण जगत्के योग-क्षेमका निर्वाह करेंगी। वीर रघुनन्दन ! मैं भी चौदह वर्षोंतक जटा और चीर धारण करके फल-मूलका

भोजन करूँगा। हे परंतप! आपके आनेकी बाट जोहता हुआ नगरसे बाहर ही रहूँगा। इतने दिनोंतक राज्यका सारा भार आपकी इन चरण-पादुकाओंपर ही रहेगा। रघुनाथजी! चौदहवाँ वर्ष पूरा होनेके बाद यदि पहले ही दिन मुझे आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा।

अध्यात्मरामायणमें भी भरतजी कहते हैं—

पादुके देहि राजेन्द्र राज्याय तव पूजिते।
तयोः सेवां करोम्येव यावदागमनं तव॥

(अयोध्या० ९। ४९)

'राजेन्द्र! आप मुझे राज्य-शासनके लिये अपनी जगत्पूज्य चरण-पादुकाएँ दीजिये। जबतक आप लौटेंगे, तबतक मैं उन्हींकी सेवा करता रहूँगा।'

इत्युक्त्वा पादुके दिव्ये योजयामास पादयोः।
रामस्य ते ददौ रामो भरतायातिभक्तितः॥
गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते।
रामं पुनः परिक्रम्य प्रणनाम पुनः पुनः॥
भरतः पुनराहेदं भक्त्या गद्गदया गिरा।
नवपञ्चसमान्ते तु प्रथमे दिवसे यदि॥
नागमिष्यसि चेद् राम प्रविशामि महानलम्।

(अध्यात्म०, अयोध्या० ९। ५०—५३)

'ऐसा कहकर भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें दो दिव्य पादुकाएँ (खड़ाऊँ) पहना दीं। श्रीरामचन्द्रजीने भरतका भक्तिभाव देखकर वे खड़ाऊँ भरतजीको दे दीं। भरतजीने वे रत्न-जटित दिव्य पादुकाएँ लेकर फिर श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा की और उन्हें बार-बार प्रणाम किया।

तदनन्तर वे भरतजी प्रेमभरी गद्गद-वाणीसे इस प्रकार बोले—'रामजी! यदि चौदह वर्षके व्यतीत होनेपर आप पहले दिन ही अयोध्या न लौटे तो मैं महान् अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा।'

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥

महाभारतमें बतलाया है—

विसर्जितः स रामेण पितुर्वचनकारिणा।
नन्दिग्रामेऽकरोद् राज्यं पुरस्कृत्यास्य पादुके॥

(वन० २७७। ३९)

'पिताके वचनोंका पालन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा विदा किये हुए भरतजी नन्दिग्राममें आ गये और उन श्रीरघुनाथजीकी पादुकाओंको सामने रखकर समस्त राज्यका पालन करने लगे।'

वाल्मीकीय रामायणमें वर्णन आता है कि भरतजी नन्दिग्राममें जाकर बड़े-बूढ़ोंसे इस प्रकार बोले—

एतद् राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम्।
योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते॥

(अयोध्या० ११५। १४)

'मेरे भाई श्रीरामने मुझे उत्तम धरोहरके रूपमें यह राज्य दिया है और इसके योगक्षेमके संचालनके लिये ये दो स्वर्णभूषित पादुकाएँ दी हैं।'

फिर प्रजामण्डलसे कहने लगे—

छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ।
आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम॥

(वा० रा० अयोध्या० ११५। १६)

'ये पादुकाएँ आर्य श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी प्रतिनिधि हैं, अतः

इनपर शीघ्र ही छत्र धारण करो। मेरे गुरु श्रीरामचन्द्रजीकी इन पादुकाओंसे ही राज्यमें धर्म स्थापित होगा।'

तततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यार्यपादुके।
तदधीनस्तदा राज्यं कारयामास सर्वदा॥
तदा हि यत् कार्यमुपैति किञ्चि-
दुपायनं चोपहृतं महार्हम्।
स पादुकाभ्यां प्रथमं निवेद्य
चकार पश्चाद् भरतो यथावत्॥

(वा० रा०, अयोध्या० ११५। २३-२४)

'तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी श्रेष्ठ पादुकाओंका अभिषेक करके और स्वयं सर्वदा उनके अधीन होकर श्रीमान् भरतजी उस समय राज्यका पालन करने लगे। उस समय जो कोई भी कार्य उपस्थित होता तथा जो कुछ भी श्रेष्ठ बहुमूल्य भेंट आती, वह सब भरतजी पहले पादुकाओंको निवेदित करके फिर उसका यथावत् प्रबन्ध कर देते।'

श्रीहनुमान्‌जीने नन्दिग्राममें आकर—

ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम्।
जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम्॥
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम्।
समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम्॥
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम्।
पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुन्धराम्॥

(वा० रा०, युद्ध० १२५। ३०—३२)

—देखा कि भरतजी कृश और दीन हैं तथा आश्रम बनाकर रहते हैं। उनकी जटाएँ बढ़ी हुई हैं, शरीरपर मैल जम गया है, भाईके वनवासके

दुःखने उन्हें बहुत ही कृश कर दिया है, फल-मूल ही उनका भोजन है, वे इन्द्रियोंका दमन करके तपस्यामें लगे हुए हैं और धर्मका आचरण करते हैं। उनके मस्तकपर जटाओंका भार है और शरीरपर वल्कल तथा मृगचर्मके वस्त्र हैं। उनका जीवन बहुत नियमित और अन्तःकरण भगवान्‌के ध्यानसे विशुद्ध है, वे ब्रह्मर्षिके समान तेजस्वी भरतजी श्रीरघुनाथजीकी उन पादुकाओंको आगे रखकर पृथ्वीका शासन कर रहे हैं।'

महाभारतमें भी आया है कि—

स तत्र मलदिग्धाङ्गं भरतं चीरवाससम् ॥
अग्रतः पादुके कृत्वा ददर्शासीनमासने ।

(वन० २९१ । ६२-६३)

'वनवाससे लौटकर उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने नन्दिग्राममें आकर चीर-वस्त्र पहने हुए और मैल जमे हुए शरीरवाले भरतको पादुकाओंको आगे रखकर आसनपर बैठे हुए देखा।'

श्रीरामचन्द्रजीको आते देखकर वे बड़े ही प्रसन्न हुए और—

आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ॥
पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम् ।
शुक्ले च वालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ॥
....
प्रत्युद्ययौ तदा रामं महात्मा सचिवैः सह ।

(वा० रा०, युद्ध० १२७ । १७-१८, २१)

'धर्मज्ञ भरतने अपने बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीकी पादुकाएँ सिरपर रख लीं तथा श्वेत मालाओंसे सुशोभित सफेद रंगका छत्र और राजाओंके योग्य सोनेसे मढ़े हुए दो सफेद चँवर भी ले लिये। उस समय वह महात्मा भरत मन्त्रियोंके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी अगवानीके लिये शीघ्र ही चल पड़े।'

अध्यात्मरामायणमें भी लिखा है कि—

भरतः पादुके न्यस्य शिरस्येव कृताञ्जलिः ॥
शत्रुघ्नसहितो रामं पादचारेण निर्ययौ ।

(अध्यात्म०, युद्ध० १४ । ७५-७६)

'श्रीरघुनाथजीसे मिलनेके लिये भाई शत्रुघ्नके सहित भरतजी सिरपर भगवान्‌की पादुकाएँ रखकर हाथ जोड़े हुए पैदल ही चले।'

इस प्रकार चरण-पादुकाओंको चरणोंके तुल्य समझकर सेवा करनेका भाव, कथा या चरित्र भरतजीसे पूर्व कहीं देखनेमें नहीं आता। अतः हमलोगोंको भरतजीको आदर्श मानकर भगवान्‌के चरण, चरण-पादुका और चरण-रजकी सेवा करनी चाहिये।

(५) अर्चन-भक्ति

धातु आदिसे बनी मूर्ति या चित्रपटके रूपमें देखे हुए अथवा श्रीभगवान्‌के भक्तोंसे सुने हुए भगवान्‌के स्वरूपका बाह्य सामग्रियोंसे तथा भगवान्‌की मानसिक मूर्तिका मानसिक सामग्रियोंसे एवं उनके साक्षात् विग्रह और चरणोंका नानाविध उपचारोंसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवन-पूजन करना और उनके तत्त्व, रहस्य तथा प्रभावको समझ-समझकर प्रेममें मुग्ध होना 'अर्चन-भक्ति' है।

ये लक्षण भी भरतजीमें विद्यमान थे। साक्षात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेमपूर्वक पूजा करनेकी तो बात ही क्या, भगवान्‌की अनुपस्थितिमें भरतजी मनसे भगवान्‌को आसनपर स्थापन करके मनसे ही उनकी सेवा-पूजा किया करते थे। जब भरतजी महाराज भरद्वाजजीके आश्रममें गये, तब वहाँ भरद्वाजजीने भरतजीके आतिथ्य-सत्कारमें सिद्धियोंसे राजमहलकी रचना करके भरतजीके लिये राजाओंके योग्य एक सिंहासन-की स्थापना की थी। किंतु भरतजी उस सिंहासनपर नहीं बैठे, बल्कि उसे

साक्षात् भगवान् श्रीरामका सिंहासन मानकर स्वयं मन्त्रीके स्थानपर स्थित हो रातभर चँवर डुलाते हुए ही भगवान्‌की सेवा करते रहे। श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—

तत्र राजासनं दिव्यं व्यजनं छत्रमेव च।
भरतो मन्त्रिभिः सार्धमभ्यवर्तत राजवत्॥
आसनं पूजयामास रामायाभिप्रणम्य च।
वालव्यजनमादाय न्यषीदत्सचिवासने॥

(वा० रा०, अयोध्या० ९१। ३८-३९)

'भरतने वहाँ दिव्य राज्यसिंहासन, चँवर और छत्र भी देखे तथा उनमें राजाकी भावना करके मन्त्रियोंके साथ उन सबकी प्रदक्षिणा की। 'सिंहासनपर श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं' ऐसा मानकर उन्होंने श्रीरामको प्रणाम किया और उस सिंहासनकी भी पूजा की। फिर अपने हाथमें चँवर ले वे मन्त्रीके आसनपर जा बैठे।'

भरतजीने इस प्रकार सेवा-पूजा करते हुए ही वह रात्रि व्यतीत की। कैसी अनोखी सेवा-पूजा है!

जब भरतजी नन्दिग्राम आये तब वहाँ राजसिंहासनपर भगवान्‌के स्थानमें भगवान्‌की चरण-पादुकाओंको स्थापित करके उनकी पत्र, पुष्प, गन्ध आदिके द्वारा शास्त्रविधिके अनुसार पूजा किया करते थे।

अध्यात्मरामायणमें बतलाया है—

तत्र सिंहासने नित्यं पादुके स्थाप्य भक्तितः॥
पूजयित्वा यथा रामं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहं नियतव्रतः॥
राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले।
तानि पादुकयोः सम्यङ् निवेदयति राघवः॥

(अयोध्या० ९। ७१-७२, ७४)

'वहाँ एक सिंहासनपर उन दोनों पादुकाओंको रखकर वे नियमित व्रतवाले रघुश्रेष्ठ भरतजी श्रीरामचन्द्रजीके समान ही उनकी नित्य भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्प और अक्षत आदि समस्त राजोचित सामग्रियोंसे पूजा करनेके अनन्तर पृथ्वीके प्रतिदिन जितने भी राजकार्य होते, उन सबको वे रघुश्रेष्ठ भरतजी पादुकाओंके सामने भली प्रकार निवेदन कर दिया करते थे।'

इसी प्रकार पद्मपुराणमें भी आता है कि—

रामस्य पादुके राज्यमवाप्य भरतः शुभे।
प्रत्यहं गन्धपुष्पैश्चापूजयत् कैकयीसुतः॥
तपश्चरणयुक्तेन तस्मिंस्तस्थौ नृपोत्तमः।

(उत्तर० २६९। १९०-१९१)

'कैकेयीनन्दन भरतजी श्रीरामचन्द्रजीकी उन मङ्गलमयी पादुकाओंको राज्यसिंहासनपर स्थापित करके नित्य गन्ध-पुष्प आदिसे उनकी पूजा किया करते और इस प्रकार वे नृपश्रेष्ठ भरतजी उस नन्दिग्राममें तपस्यामें संलग्न होकर रहने लगे।'

श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है—

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राजकाज बहु भाँति॥

भगवान्‌के श्रीविग्रहकी पूजा तो शास्त्रोंमें स्थान-स्थानपर मिलती है; किंतु भगवान्‌के स्थानमें चरणपादुकाओंको रखकर उनकी भी श्रद्धा-प्रेमपूर्वक पूजा करना—इस शिक्षाके प्रवर्तक आचार्य तो श्रीभरतजी ही हुए। धन्य है उनकी इस अलौकिक अर्चन-भक्तिको!

चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होनेपर जब श्रीरामचन्द्रजी महाराज अयोध्या आ रहे थे, तब तो भरतजीने प्रत्यक्ष ही विमानपर स्थित

श्रीरामचन्द्रजीका अर्घ्य-पाद्यादिसे विधिपूर्वक पूजन किया।

प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः।
यथार्थेनार्घ्यपाद्याद्यैस्ततो राममपूजयत्॥

(वा० रा०, युद्ध० १२७। ३६)

'भरतजी प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि लगाये हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर उन्होंने विमानमें विराजमान श्रीरामजीकी विधिपूर्वक अर्घ्य-पाद्य आदिसे पूजा की।'

इस प्रकार रामचरित्रोंमें यत्र-तत्र भरतजीके द्वारा पूजा करनेके अनेक स्थल मिलते हैं। हमलोगोंको भी भरतजीको आदर्श मानकर भगवान्‌की सेवा-पूजा करनेमें तत्परतासे लगना चाहिये।

(६) वन्दन-भक्ति

श्रीभगवान्‌के शास्त्रवर्णित स्वरूप, भगवान्‌के नाम, भगवान्‌की धातु आदिकी मूर्ति, चित्र अथवा मानसिक मूर्तिको एवं भगवान्‌के साक्षात् चरणोंको शरीर अथवा मनसे श्रद्धासहित प्रणाम करना और ऐसा करते हुए भगवत्प्रेममें मुग्ध होना 'वन्दन-भक्ति' है। ये लक्षण भी भरतजीमें पूर्णतया विद्यमान थे। भरतजीकी वन्दन-भक्तिके विषयमें तो कहना ही क्या है! वे जब महाराज श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये विदा हुए, तब रास्तेमें उनको नमस्कार करते हुए ही गये और चित्रकूटमें पहुँचकर तो वे दण्डकी भाँति भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़े तथा करुणाभावसे विह्वल हो गये। श्रीतुलसीदासजी लिखते हैं—

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥

× × ×

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥

× × ×

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए ॥

श्रीअध्यात्मरामायणमें बतलाया है—

मातुर्मे दुष्कृतं किञ्चित्स्मर्तुं नार्हसि पाहि नः ॥
इत्युक्त्वा चरणौ भ्रातुः शिरस्याधाय भक्तितः ।
रामस्य पुरतः साक्षाद्दण्डवत्पतितो भुवि ॥

(अयोध्या० ९ । २५-२६)

'मेरी माताका जो कुछ अपराध है, उसे भूल जाइये और हमलोगोंकी रक्षा कीजिये।'—ऐसा कहकर भरतजीने भाई श्रीरामचन्द्रजीके चरणोको भक्तिपूर्वक मस्तकपर रख लिया और साक्षात् श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख दण्डके समान पृथ्वीपर गिर पड़े।'

चित्रकूटसे वापस आते समय भी भरतजी भगवान्को प्रणाम करके दुःखित हृदयसे ही आये हैं। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी ॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥

× × ×

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई ॥

जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वनसे लौटकर अयोध्या आये, तब भरतजी उनके चरणोंमें लिपट गये; यद्यपि भरतजी उन चरणोंको छोड़ना नहीं चाहते थे, पर भगवान्ने बलपूर्वक उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। उस समय भरतजीने सीताजीको भी प्रणाम किया और अपनेको अपराधी मानकर उनसे अपराधके लिये क्षमा-प्रार्थना की।

श्रीवाल्मीकीय रामायणका वर्णन है—

ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ।
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥
आरोपितो विमानं तद् भरतः सत्यविक्रमः ।
राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥
ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परंतपः ।
अथाभ्यवादयत्प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥

(युद्ध० १२७ । ३८, ४०, ४२)

'उस समय भरतजीने विमानके अग्रभागमें विराजमान भाई श्रीरामको देखा और जिस प्रकार लोग मेरुपर्वतस्थ दीखते हुए सूर्यको नमस्कार करते हैं, उसी प्रकार उस समय श्रीरामको विनयपूर्वक प्रणाम किया। भगवान् श्रीरामने सत्यपराक्रमी भरतजीको उस विमानपर चढ़ा लिया। भरतजीने श्रीरघुनाथजीके पास पहुँचकर प्रसन्नचित्त हो पुनः प्रणाम किया। तदनन्तर भाई लक्ष्मणसे मिलकर फिर परंतप भरतजीने सीताजीको अपना नाम उच्चारण करके प्रेमसे अभिवादन किया।'

प्रायः ऐसा ही वर्णन अध्यात्मरामायणमें भी आया है। वहाँ बतलाया है—

आरोपितो विमानं तद् भरतः सानुजस्तदा ।
राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥
ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं नाम कीर्तयन् ।
अभ्यवादयत प्रीतो भरतः प्रेमविह्वलः ॥

(युद्ध० १४ । ८३, ८५)

'उस समय भगवान् श्रीरामने भाई शत्रुघ्नके सहित भरतजीको उस विमानपर चढ़ा लिया; श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचनेपर भरतजीने अति आनन्दित हो उन्हें पुनः प्रणाम किया। फिर प्रेमसे विह्वल हुए भरतजीने

लक्ष्मणजीसे मिलकर श्रीसीताजीको अपना नाम उच्चारण करते हुए प्रेमपूर्वक प्रणाम किया।'

उस समयकी भरतजीकी अवस्थाका दिग्दर्शन कराते हुए पद्मपुराणमें भी बतलाया है—

दृष्ट्वा समुत्तीर्णमिमं रामचन्द्रं स तैर्युतम्।
हर्षाश्रूणि प्रमुञ्चंश्च दण्डवत् प्रणनाम ह॥
उत्थापितोऽपि च भृशं नोदतिष्ठद् रुदन् मुहुः।
रामचन्द्रपदाम्भोजग्रहणासक्तबाहुभृत् ॥
पतिव्रतां जनकजाममन्यत ननाम च॥
मातः क्षमस्व यदघं मया कृतमबुद्धिना।

(पद्म॰, पाताल॰ २। २९, ३१, ३७-३८)

'उन सहायकोंसहित श्रीरामचन्द्रजीको भूमिपर उतरे देख वे भरतजी हर्षके आँसू बहाते हुए उनके सामने ही दण्डकी भाँति धरतीपर पड़ गये। आरम्भमें भगवान्‌के बारंबार उठानेपर भी वे उठे नहीं; अपितु अपने दोनों हाथोंसे श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंको पकड़कर लगातार फूट-फूटकर रोते रहे। तत्पश्चात् पतिव्रता जनककिशोरीका दर्शन करके भरतजीने उन्हें सम्मानपूर्वक प्रणाम किया और कहा—'मा! मुझ मूर्खके द्वारा जो अपराध हो गया है, उसे क्षमा करना।'

श्रीरामचरितमानसका वर्णन इस प्रकार है—

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज॥
परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥

प्रेम और विनयकी क्या ही सुन्दर अवस्था है! भरतजी प्रेम और विनयकी तो मूर्ति ही थे। वन्दन करना तो उनका स्वभाव बन गया था।

जब कभी वे भगवान्‌से मिलते, तभी उन्हें नमस्कार किया करते थे। उनकी यह आदर्श वन्दन-भक्ति हमलोगोंके लिये सदा अनुकरणीय है।

(७) दास्य-भक्ति

श्रीभगवान्‌के गुण, तत्त्व, रहस्य और प्रभावको समझते हुए श्रद्धा-प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना और उनकी आज्ञाका पालन करना तथा प्रभुको स्वामी और अपनेको सेवक समझना 'दास्य-भावरूप भक्ति' है।

यह भाव तो भरतजीमें पद-पदपर पाया जाता है। यह तो उनका मुख्य भाव है। जब भरतजी ननिहालसे अयोध्या लौट आये, तब कैकेयीसे यह कह दिया कि मैं श्रीरामचन्द्रजीको लौटाकर उनका दास होकर उनकी सेवा करूँगा। बादमें गुरु वसिष्ठजी और मन्त्रियोंने उनको राज्य देनेकी बहुत चेष्टा की, किंतु उनके उत्तरमें भरतजीने यही कहा कि 'मैं इसमें आपका और अपना किसीका भी हित नहीं देखता। मैं तो अपना हित उनकी सेवामें ही समझता हूँ।' भरतजीके इस भावको सुनकर सभी मुग्ध हो गये। इसी भावको लेकर भरतजी रामचन्द्रजी महाराजको लाने अयोध्यासे चित्रकूटके लिये विदा हुए। मार्गमें जहाँ-कहीं वे ठहरे, उनके बर्ताव और वार्तालापसे यही भाव झलकता था। चित्रकूटमें भी उनकी प्रत्येक क्रियामें दासभाव टपकता था, क्योंकि वे दास्यभावकी एक जीती-जागती मूर्ति ही थे। उन्होंने आजीवन भगवान् श्रीरामकी सेवा और उनकी आज्ञाके पालनको ही अपना सर्वोत्तम परम धर्म मान रखा था और इसीमें वे अपना परम कल्याण समझते थे। उनकी दृष्टिमें भगवान् श्रीरामकी सेवासे बढ़कर और कोई दूसरा काम ही नहीं था। भगवान्‌की कठिन-से-कठिन आज्ञा उनके लिये सहर्ष शिरोधार्य थी। भरतजी अपने स्वामीको संकोचमें डालना पाप समझते थे। भगवान् श्रीरामकी आज्ञाके पालनार्थ ही उन्होंने चौदह वर्षतक उनका वियोग सहन किया। राज्यका

काम करते हुए पद-पदपर उनका श्रीरामके प्रति सेवाभाव चमकता था। चौदह वर्षके पश्चात् भगवान्‌के वापस आनेपर भरतजी उनका राज्य उनके चरणोंमें समर्पित करके आजीवन उन्हींकी सेवा और आज्ञापालनमें लगे रहे। कभी नगरसे बाहर जाना होता, तब वहाँ भी उनकी सेवा करना और अपने हितके लिये उपदेशकी बातें पूछते रहना—उनका मुख्य काम था। इस प्रकार भरतजीने आजीवन प्रधानतया दास्यभावमें ही अपना समय बिताया।

उनकी सेवा, आज्ञापालन और प्रेमके भावसे भगवान् स्वयं मुग्ध थे। इस विषयमें उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी ही थोड़ी है। प्रेम और विनयपूर्वक सेवाभावके लिये भरतजी परम आदर्श हैं। यद्यपि भरतजीके सारे ही आचरण दासभावके द्योतक हैं, तथापि कई स्थलोंमें तो दासभावकी ही प्रधानता है। अब नीचे कुछ प्रमुख प्रमाणोंके द्वारा उनके दासभावका दिग्दर्शन कराया जाता है—

माता कैकेयीके प्रति भरतजीके वचन हैं—

निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः।
दासभूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना॥

(वा० रा०, अयोध्या० ७३। २७)

'मैं श्रीरामको लौटा लाऊँगा और उन देदीप्यमान तेजस्वी महापुरुषका दास बनकर सुस्थिर—शान्तचित्तसे जीवन व्यतीत करूँगा।'

अध्यात्मरामायणमें भी आता है कि—

गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिलं दूरतोऽपास्य राज्यम्।
रामं सीतासमेतं स्मितरुचिरमुखं नित्यमेवानुसेवे॥

(अयोध्या० ७। ११४)

'मैंने निश्चय कर लिया; मैं सम्पूर्ण राज्यको सर्वथा छोड़कर आज ही

वनको जाऊँगा और मधुर मुसकानसे जिनका मुखारविन्द अति शोभित हो रहा है, उन श्रीराम और सीताकी नित्यप्रति सेवा करूँगा।'

भरतजी गुरु वसिष्ठजी तथा मन्त्रियोंसे कहते हैं—

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥

मार्गमें गुहके प्रति कहते हैं—

अहं रामस्य दासा ये तेषां दासस्य किङ्करः।
यदि स्यां सफलं जन्म मम भूयान्न संशयः॥

(अध्यात्म०, अयोध्या० ८। ३३)

'जो लोग भगवान् श्रीरामके दास हैं, उनके दासोंका अनुचर भी यदि मैं हो जाऊँ तो निःसंदेह मेरा जन्म सफल हो जाय।'

कैसा सुन्दर दास-भाव है!

चित्रकूटमें जाकर भरतजी भगवान् श्रीरामसे कहते हैं—

अहमप्यागमिष्यामि सेवे त्वां लक्ष्मणो यथा।
नो चेत्प्रायोपवेशेन त्यजाम्येतत्कलेवरम्॥

(अध्यात्म०, अयोध्या० ९। ३९)

'(अच्छा, यदि आप वनसे नहीं लौटना चाहते तो मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे) मैं भी वनमें चलकर लक्ष्मणके समान ही आपकी सेवा करूँ, नहीं तो मैं अन्न-जल छोड़कर इस शरीरको त्याग दूँगा।' भगवान्‌की सेवाके लिये भरतजीका कितना आग्रह है!

किंतु भगवान्‌के स्वभावको यादकर भरतजी फिर कहने लगे—

अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥
जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥

भगवान्‌के अयोध्या लौट आनेपर जब कभी भरतजी उनके साथ

किसी उपवन या अमराईमें जाते थे, तो वहाँ भी सेवा ही करते रहते। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना॥
करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई॥

× × ×

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ सीतल अँवराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥

इस प्रकार भरतजी नित्य भगवान्‌की सेवामें ही लगे रहे। धन्य है भरतजीके इस आदर्श सेवाभावको ! भरतजीके चरित्रका भलीभाँति मनन करके उनके सेवाभावको आदर्श बनाकर हमें उनका अनुकरण करना चाहिये।

(८) सख्य-भक्ति

श्रीभगवान्‌के प्रभाव, तत्त्व, रहस्य और महिमाको समझते हुए परम विश्वासपूर्वक मित्रभावसे उनकी रुचिके अनुसार बन जाना, उनमें अनन्य प्रेम करना तथा उनके गुण, रूप और लीलापर मुग्ध होकर नित्य-निरन्तर प्रसन्न रहना 'सख्यभावरूप भक्ति' है।

भरतजीके आचरण और भावोंसे केवल सखाभाव नहीं मिलता; किंतु अन्य भावोंके साथ-साथ सखाभाव भी झलकता है। जैसे वाल्मीकीय रामायणमें कहा है—

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥

(वा० रा०, अयोध्या० ७२। ३२)

भरतजी मातासे कहते हैं—'जो मेरे भाई, पिता और बन्धु हैं तथा जिनका मैं प्रिय दास हूँ, उन सरलस्वभाव श्रीरामचन्द्रजीका पता शीघ्र बतलाओ।'

चित्रकूटमें भरतजीने भगवान् श्रीरामसे प्रार्थना करते हुए कहा है—

एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया।
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि॥

(वा० रा०, अयोध्या० १०१। १२)

'इन मन्त्रियोंके साथ सिर झुकाकर मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मैं आपका भाई, शिष्य और दास हूँ, मुझपर आप दया करें।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें शिष्य, दास, पिता—इन सब शब्दोंके साथ 'बन्धु' और 'भ्राता' शब्द भी हैं, जो कि सख्य-भावके द्योतक हैं तथा 'भ्राता' शब्दके साथ ही 'बन्धु' शब्दका अलग प्रयोग करना तो सखाभावको स्पष्ट सिद्ध करता है। अतएव भरतजीका भाई, दास, शिष्य आदि भावोंके साथ-साथ सखाभाव भी था। भ्रातृत्वके भावमें भी बराबरीका भाव होनेके कारण सखाभाव टपकता है। तुलसीकृत रामायणको देखनेसे भी यह बात सिद्ध होती है। भरतजीके ही वचन हैं—

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥

× × ×

सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि॥

इन चौपाई-दोहोंमें प्रभु, पिता, माता, गुरु, स्वामी, पूज्य, हितू आदि शब्दोंके साथ 'सुहृद्' शब्दका प्रयोग किया गया है, जो कि इनसे अपना भिन्न अर्थ रखता है। अतएव यहाँ 'सुहृद्' शब्द सखाभावका ही द्योतक है। निःसंदेह भरतजीका श्रीराममें प्रधानतया दासभाव होते हुए भी भ्रातृत्व और प्रेमके नाते मित्रभाव भी था।

भगवान् श्रीरामके बर्तावसे भी भाइयोंके साथ सखाभाव प्रकट होता है। वनगमनके पूर्व राजतिलककी तैयारीके समय श्रीरामचन्द्रजी महाराज

राज्यमें सब भाइयोंका समान अधिकार मानते हुए कहते हैं—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥

इससे सब भ्राताओंके साथ श्रीरामका मित्रताका भाव झलकता है। लक्ष्मणके प्रति तो मुख्यतया 'सखा' शब्दका प्रयोग मिलता है। वनमें साथ जानेको तैयार हुए लक्ष्मणसे भगवान् कहते हैं—

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे रतः।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे॥

(वा० रा०, अयोध्या० ३१। १०)

'लक्ष्मण! तुम मेरे परम स्नेही, धर्मपरायण, धैर्य-सम्पन्न और सदा सन्मार्गपर चलनेवाले हो। तुम मुझे प्राणोंके समान प्रिय एवं मेरे अधीन, आज्ञापालक और सखा हो।'

इसके अतिरिक्त पद्मपुराणके पातालखण्डमें एक श्लोक मिलता है, जिसमें भगवान् श्रीरामने प्रेममें विह्वल होकर भरतके प्रति पाँच बार 'भाई' शब्दका उच्चारण किया है। इसमें भरतजीके प्रति भगवान्‌का बराबरीका तथा आदर और प्रेमका भाव सन्निहित है, इससे यह सखाभावका ही द्योतक है।

यानादवतताराशु विरहक्लिन्नमानसः।
भ्रातर्भ्रातः पुनर्भ्रातर्भ्रातर्भ्रातर्वदन्मुहुः॥

(पद्म०, पाताल० २। २८)

'निकट आनेपर भगवान् श्रीरामका हृदय विरहसे कातर हो उठा और वे 'भैया! भैया भरत!' इस प्रकार कहते तथा बारम्बार

'भाई ! भाई !! भाई !!!' की रट लगाते हुए तुरंत ही विमानसे उतर पड़े।'

तुलसीकृत रामायणमें भी भरतजीके प्रति भगवान्‌के द्वारा सम्मानपूर्वक बराबरीका व्यवहार किये जानेकी बात आयी है।

श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं—

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी ॥

—इस व्यवहारसे भगवान्‌का भरतके प्रति सखाभाव स्पष्ट प्रकट होता है।

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी महाराजके बर्तावमें तो कई जगह ही भरतके प्रति आदर-सम्मान, बराबरी और प्रेमका व्यवहार पाया जाता है, इससे स्पष्ट ही सखाभाव झलकता है। जैसे, जब-जब भरतजी नमस्कार करते, तभी भगवान् उन्हें हृदयसे लगा लिया करते। भगवान्‌का यह बर्ताव सखाभावका ही परिचायक है।

(९) आत्मनिवेदन-भक्ति

श्रीभगवान्‌के तत्त्व, रहस्य, प्रभाव और महिमाको जानकर ममता और अहंकाररहित होकर सब कुछ भगवान्‌का ही समझते हुए तन-मन-धन-जनसहित अपने-आपको तथा सम्पूर्ण कर्मोंको श्रद्धा और परम प्रेमपूर्वक भगवान्‌को समर्पण कर देना 'आत्मनिवेदनभावरूप भक्ति' है।

भरतजीमें आत्मनिवेदनका भाव भी कम नहीं था; क्योंकि वे अपनेको भगवान्‌के अर्पित ही समझते थे। तुलसीकृत रामायणमें भरतजी विलाप करते हुए कैकेयीके सामने पिताको लक्ष्य कर कहते हैं—

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही ॥

इसी प्रकार अध्यात्मरामायणमें भी कहा है—

हा तात क्व गतोऽसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥
असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क्व गतोऽसि भोः ।

(अध्यात्म०, अयोध्या० ७। ६६-६७)

'हा तात! मुझे दुःख-समुद्रमें छोड़कर आप कहाँ चले गये? हाय! महाराज रामको मुझे समर्पण किये बिना ही आप कहाँ चले गये?'

भरतजीके इस पश्चात्तापसे यह सिद्ध होता है कि वे अपने-आपको श्रीरामके समर्पित ही समझा करते थे।

इसके अतिरिक्त भरतजी 'जो कुछ भी राज्य और धन है, वह सब श्रीरघुनाथजी महाराजका ही है, मैं भी उनका ही हूँ, अतः इन सबको उनके समर्पण करके उनकी सेवा करूँगा'—इस भावको हृदयमें रखकर चित्रकूट गये। वहाँ उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको लौटानेकी अनुनय-विनयपूर्वक बहुत चेष्टा की, परंतु श्रीरामचन्द्रजीने किसी प्रकार भी वापस लौटना स्वीकार नहीं किया और भरतको ही राज्यशासनके लिये बाध्य किया। 'महाराज रामकी आज्ञाका पालन करना ही तुम्हारा परम धर्म है'—गुरु वसिष्ठजीकी ऐसी सम्मति होनेके कारण भरतजीने भगवान्‌के स्थानमें भगवान्‌की चरणपादुकाओंको आश्रय बनाकर उनके प्रति ही समस्त राज्यको और अपने-आपको समर्पण कर दिया। चौदह वर्षकी अवधि बीतनेपर भगवान्‌के अयोध्या पधारनेपर धरोहररूपसे रखा हुआ भगवान्‌का राज्य भगवान्‌को सौंप दिया और अपना शरीर भी भगवान्‌के चरणोंमें अर्पण कर दिया। भरतजी भगवान्‌की शरणमें ही अपना परम कल्याण मानकर आजीवन उनकी आज्ञाका पालन करते रहे। राज्यके किसी भी पदार्थकी तो बात ही क्या, अपने शरीरमें भी वे अपना अधिकार नहीं समझते थे। वे केवल भगवान्‌को ही अपना सर्वस्व मानकर केवल उन्हींपर निर्भर रहा करते थे। इसके लिये रामायण आदि सब शास्त्र

प्रमाण हैं। इस विषयमें नीचे कुछ प्रमाणोंका दिग्दर्शन कराया जाता है—

भरतजी भरद्वाजजीसे कहते हैं—

मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि।
किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शाश्वतः॥
अतो गत्वा मुनिश्रेष्ठ रामस्य चरणान्तिके।
पतित्वा राज्यसम्भारान् समर्प्यात्रैव राघवम्॥

....

नेष्येऽयोध्यां रमानाथं दासः सेवेऽतिनीचवत्॥

(अध्यात्म०, अयोध्या० ८।४९-५१)

'स्वामिन्! महाराज रामके रहते हुए मुझे राज्यसे क्या प्रयोजन है? मुनिश्रेष्ठ! मैं तो सदा ही श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ। अतः मुनिनाथ! मैं श्रीरामके पास जाकर उनके चरणकमलोंमें पड़कर यह सारी राजपाटकी सामग्री उन्हें यहीं सौंपकर लक्ष्मीपति श्रीरामको अयोध्या ले आऊँगा और अति तुच्छ दासकी भाँति उनकी सेवा करूँगा।'

आत्मसमर्पणका भाव व्यक्त करते हुए भरतजी श्रीरामचन्द्रजीसे कह रहे हैं—

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥
नाथ भयउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को॥
अब कृपाल जस आयसु होई। करौं सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पार पावौं जेहि सेई॥

नन्दिग्राममें निवास करते समय वे मन्त्रियोंसे बता रहे हैं—

ततो निक्षिप्तभारोऽहं राघवेण समागतः।
निवेद्य गुरवे राज्यं भजिष्ये गुरुवर्तिताम्॥

राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके।
राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपापो भवाम्यहम्॥

(वा० रा०, अयोध्या० ११५।१९-२०)

'श्रीरामचन्द्रजीका समागम होते ही उन महापुरुषकी सेवामें यह राज्य समर्पित कर देनेपर मेरा भार उतर जायगा और मैं उनकी आज्ञाके अधीन रहकर उन्हींकी सेवामें लग जाऊँगा। मेरे पास धरोहरके रूपमें रखी हुई इन उत्तम पादुकाओंको, इस राज्यको और अयोध्याको भी श्रीरामकी सेवामें समर्पित करके मैं सब प्रकारके पापोंसे मुक्त होकर विशुद्ध हो जाऊँगा।'

तदनन्तर भगवान्‌के अयोध्या लौटनेपर भरतजीने क्या किया, सो बतलाते हैं—

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम्।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित्॥
अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः।
एतत् ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया॥
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः।

(वा० रा०, युद्ध० १२७।५४—५६)

'फिर धर्मात्मा भरतजीने स्वयं ही हाथमें उनकी वे दोनों पादुकाएँ लेकर महाराज श्रीरामचन्द्रजीके पैरोंमें पहना दीं। उस समय भरतजीने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे निवेदन किया कि मेरे पास थाती रखा हुआ आपका यह समस्त राज्य आज मैंने आपको वापस सौंप दिया है, आज मेरा जन्म सफल हो गया एवं मेरा मनोरथ पूरा हुआ।'

अध्यात्मरामायणमें भी लगभग इसी तरहका प्रसङ्ग आया है—

भरतः पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते।
योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः॥
राज्यमेतन्न्यासभूतं मया निर्यातितं तव।
अद्य मे सफलं जन्म फलितो मे मनोरथः॥

(युद्ध० १४। ९३-९४)

'तत्पश्चात् भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीकी उन भलीभाँति पूजा की हुई पादुकाओंको भक्तिपूर्वक श्रीरामके ही चरणोंमें पहना दिया और कहा—प्रभो! मुझे धरोहररूपसे दिये हुए आपके इस राज्यको मैं पुनः आपको ही सौंपता हूँ; आज मेरा जन्म कृतार्थ हो गया और मेरी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो गयीं।'

महाभारतमें भी बतलाया है कि—

तस्मै तद् भरतो राज्यमागतायातिसत्कृतम्।
न्यासं निर्यातयामास युक्तः परमया मुदा॥

(वन० २९१। ६५)

'भरतजीने वह धरोहररूपमें रखा हुआ राज्य वनसे लौटकर आये हुए उन श्रीरामचन्द्रजीको बड़े ही हर्षसे अत्यन्त् सत्कारपूर्वक सौंप दिया।'

वस्तुतः भरतजीका समस्त जीवन ही मूर्तिमान् आत्मसमर्पण है। उनके सारे कार्य श्रीरामके लिये ही होते थे। रामकी प्रीति और प्रसन्नता ही उनके जीवनका मुख्य तथा नित्य लक्ष्य था; क्योंकि भरतजीमें नवधा भक्तिके सिवा प्रेमलक्षणा भक्ति भी पूर्णतया विद्यमान थी। वे प्रेमकी एक जीती-जागती मूर्ति ही थे। इसीसे भरद्वाज मुनिने कहा था—

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥

इतना सब होनेपर भी भरतजी अपनेमें कोई गुण नहीं देख पाते। वे अपनेको विषयी, कपटी, कुटिल ही मानते हैं। असलमें आत्मनिवेदन वही सच्चा है, जहाँ निवेदनका अभिमान भी नहीं है। सब कुछ सहज ही समर्पित है और माना जाता है कि कुछ भी नहीं है। भरतजी ऐसे ही हैं।

भरतजीकी इस विलक्षण आत्मनिवेदन-भक्तिको आदर्श बनाकर चलनेवाले पुरुष धन्य हो सकते हैं।

उपसंहार

ऊपर भक्तिके नौ प्रकार बतलाये गये हैं, उनको तीन भागोंमें बाँट लेना चाहिये। पहली तीन—श्रवण, कीर्तन और स्मरण-भक्ति तो परोक्षमें यानी उपास्यदेवकी अनुपस्थितिमें की जाती हैं और दूसरी तीन— पादसेवन, अर्चन और वन्दन-भक्ति पूर्णतया तो भगवान्‌के साक्षात् मिलनेपर ही होती हैं, किंतु भगवान्‌की अनुपस्थितिमें मनके भावसे उनको प्रत्यक्ष मानकर भी इनका अनुष्ठान किया जाता है।

ये छः भक्ति तो क्रियारूप हैं। शेष तीन—दास, सख्य और आत्मनिवेदन-भक्ति भावरूप हैं; क्योंकि उनमें भावके अनुसार क्रिया होनेपर भी प्रायः भावकी ही प्रधानता रहती है। भक्तिमें प्रेमभाव तो एक व्यापक वस्तु है, उसका सम्बन्ध तो सभी प्रकारकी भक्तियोंके साथ है। इसलिये क्रियारूप भक्तिके साथ भावका संयोग होनेपर वह भी भावरूप हो जाती है।

बहुत-से भक्तगण श्रवणको सत्सङ्ग, कीर्तनको भजन और स्मरणको ध्यानका रूप देते हैं; क्योंकि इन तीनोंका उनके साथ परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये इन तीनोंको एक समूहमें बाँधकर बतलाया गया है। इनमें भी वृक्षके मूलमें जल सींचनेकी भाँति

सत्सङ्ग भजन-ध्यानका पोषक है। इन तीनोंमेंसे एकका अनुष्ठान करनेसे भी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, जैसे श्रवणसे परीक्षित् आदि, कीर्तनसे नारद आदि और स्मरणसे ध्रुव आदि परमात्माको प्राप्त हो गये; फिर तीनोंके एक साथ अनुष्ठान करनेसे परमात्माको प्राप्त होनेमें तो कहना ही क्या है।

इसी प्रकार पादसेवन, अर्चन और वन्दन—इन तीनोंको एक दूसरेके समूहमें बाँधा गया है; क्योंकि भगवच्चरणोंकी सेवा, पूजा और नमस्कार—ये तीनों ही चरणोंसे विशेष सम्बन्ध रखते हैं। इन तीनोंमेंसे भी एकके सेवनसे ही भगवान्की प्राप्ति हो सकती है, जैसे पादसेवनसे केवट आदि , अर्चनसे पृथु आदि और वन्दनसे अक्रूर आदि भगवान्को प्राप्त हो गये; फिर एक साथ तीनोंके सेवनसे भगवत्प्राप्ति हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है।

इसी तरह दास्यभाव, सख्यभाव और आत्मनिवेदनभाव—ये तीनों भावरूपसे अनुष्ठान करने योग्य हैं; इसी कारण इन तीनोंकी एकता है। ये तीनों भाव एक साथ भी रह सकते हैं और अलग-अलग भी। इन तीनोंमेंसे किसी एक भावसे भी भगवान्की प्राप्ति हो सकती है, जैसे दासभावसे हनुमान् आदि, सखाभावसे अर्जुन आदि और आत्मनिवेदनभावसे बलि आदि भगवान्को प्राप्त हो गये हैं; फिर सब भावोंसे उपासना की जानेपर भगवान्की प्राप्ति हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है।

अतएव हमलोगोंको श्रद्धा-प्रेम और निष्कामभावपूर्वक बड़े ही उत्साहके साथ तत्परतासे भगवान्की भक्ति करनी चाहिये।

——::×::——